द्वितीय अध्याय
यशपाल का जीवन और साहित्य

आधुनिक आलोचना में दो प्रमुख धाराएँ प्रभावशाली रही हैं। प्रथम धारा की मान्यता है कि साहित्यक सृजन में सृजनकर्त्ता का व्यक्तित्व परोक्ष रूप से विद्यमान रहता है। द्वितीय धारा की मान्यता के अनुसार साहित्यिक विश्लेषण और उसके कलात्मक निर्माण में साहित्यकार के व्यक्तित्व, समाज, देशकाल आदि का विचार अनावश्यक है, क्योंकि एक विशेष साहित्यिक रचना अपने में आत्मनिर्भर, आत्म-नियंत्रित एवं जीवित तथ्य है। साहित्यिक सृजन का अपना आन्तरिक संदर्भ, संयोजन एवं दृष्टिकोण होता है। इसके विश्लेषण के लिए व्यक्तित्व, समाज, देशकाल आदि जैसे बाह्य उपकरणों पर विचार करने की अपेक्षा अर्थात रचनाकार की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए उसके मस्तिष्क की बुनावट के पहलुओं को समझना होता है।

यशपाल ऐसे साहित्यकार हैं जिनके सृजन के स्रोतों में उनके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय पहलुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यशपाल की कल्पना शक्ति ने उनकी रचनाओं को मानव जीवन की कतिपय शाश्वत संवेदनाओं, भावनाओं, प्रेरणाओं, आकांक्षाओं एवं सुख-दु:खों के गंभीर तह तक पहुँचाया है।

किसी भी महान साहित्यकार के कृतित्व पर उसके व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभवों की गहरी छाप रहती है। वह युग की समष्टिगत चेतनाओं से अनुस्यूत होकर ही साहित्य सृजन करता है। वह जिन परिस्थितियों और संस्कारों से प्रेरित होकर साहित्य सृजन करता है, उन घटनाओं से परिचित होना आवश्यक होता है।

(अ) जीवन परिचय -

विश्व की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील युग के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी परिवर्तित होती जाती हैं। आज का भारत स्वतंत्रता पूर्व के भारत से भिन्न था, क्योंकि उस समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ आज से भिन्न थीं। अंग्रेजों की दमन नीति तथा अत्याचार से सम्पूर्ण देश त्रस्त था। जब भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था और सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल नहीं थीं, उसी समय हिन्दी साहित्य को आदर्शवादी कुहेलिका से निकाल यथार्थ की प्रखर रोशनी में लाने वाले मेघावी साहित्यकार यशपाल जी का जन्म "3 दिसम्बर, 1903 को फिरोजपुर छावनी में एक खत्री परिवार में हुआ। इनकी माता प्रेमदेवी फिरोजपुर के प्रसिद्ध अनाथालय में अध्यापिका के रूप में कार्यरत थीं। इनके पिता लाला हीरालाल कांगड़ा के स्थायी निवासी थे।"[13] छोटी रकमें भारी सूद पर देने वाले लब्ध प्रतिष्ठित और इज्जतदार लालाजी की साहूकारी अधिक समय तक नहीं चल पायी और उन्हें शहर में साधारण नौकरी करनी पड़ी। माताजी प्रेमदेवी उच्चकुलोत्पन्न, परिश्रमी, साहसी और सहनशील नारी थीं। लालाजी के साथ उनका अनमेल विवाह होने के कारण दोनों पति-पत्नी अधिक दिन एक साथ नहीं रह सके। पति की मृत्यु के बाद यशपाल और उनके छोटे भाई धर्मपाल के पोषण का भार उनकी माताजी के कंधों पर आ गया।

बचपन से यशपाल पर अपनी माताजी के ही संस्कार अधिक प्रभावी रूप में रहे। अपने पुत्रों को उच्च-शिक्षित करने के लिए वे कांगड़ा छोड़ पंजाब में स्थायी रूप से रहने लगीं और वेतनभोगी अध्यापिका के रूप में कार्य करने लगीं। अपनी माता के संबंध में अत्यंत कृतज्ञ भाव से यशपाल जी कहते हैं - "हम दोनों (स्वयं एवं भ्राता धर्मपाल) को सफल और आदर्श बनाने के लिए माँ कांगड़ा का पहाड़ी इलाका छोड़कर पंजाब के लू से तपने वाले मैदानों में आर्य कन्या

---

[13] डॉ. विजय कुमार विट्ठल - यशपाल के उपन्यासों में चित्रित पात्रों का स्वरूप-विश्लेषण, पृ. 13

पाठशाला में नौकरी करके निर्वाह कर रही थीं। इस नौकरी से माँ को कुछ उद्देश्य या परमार्थ के कर्त्तव्य की पूर्ति का संतोष होता था।"[14]

यशपाल की माताजी आधुनिक विचारों की महिला थीं। उनकी मेहनत, प्रखर बुद्धिमत्ता, स्वदेश भक्ति, दृढ़ निश्चयी प्रवृत्ति, स्वाभिमानी वृत्ति तथा हास्य, विनोदमयी स्वाभाव आदियों का प्रभाव यशपाल जी पर लक्षित होता है। यशपाल जी नारी के साहसिक व्यक्तित्व का पहला परिचय अपनी माता के रूप में पाते हैं।

यशपाल के जीवन के विभिन्न चरण - प्रारम्भिक काल, क्रांतिकारी कार्य एवं साहित्यिक क्षेत्र में किए गए कार्य-रूप निम्नानुसार है -

1. अध्ययन -

जीवित रहने के लिए जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संघर्षमय जीवन मनुष्य की नियति है। यशपाल की माता द्वारा लाये गये तीस रूपयों से घर का सारा कार्य और उनकी शिक्षा आदि का खर्च चलाना कठिन था। आर्य समाज जैसी संस्थाओं ने गुरुकुल स्कूल खोले हुए थे जिनमें वेदों की शिक्षा दी जाती थी और उसके साथ ही साथ उनके मस्तिष्क में ब्रिटिश सरकार विरोधी अंकुर भी डाले जाते थे। आर्यसमाजी प्रभाव तथा आर्थिक विपन्नता के कारण यशपाल को सातवीं तक की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय में ही रखा गया। इन वर्षों ने उन पर अमिट छाप छोड़ी। इसी समय से उनके हृदय में देश-प्रेम के बीज अंकुरित होते चले गये।

होनहार होने के कारण वह सबके प्रिय थे। उनके लिए आश्रम की तरफ से पौष्टिक भोजन तथा कुछ गरम कपड़ों की व्यवस्था की गई, लेकिन अन्य छात्र इसे सहन न कर सके तथा यह मालूम पड़ने पर कि यशपाल जी नि:शुल्क पढ़ते हैं, उन्हें नित्य-प्रतिदिन ताने सुनने को मिलते थे। ऐसी अवस्था में वह अति क्षुब्ध हो जाया करते थे। जब वे सातवीं कक्षा में थे, तब वे असाध्य रूप से संग्रहणी के शिकार हुए। बीमारी बढ़ जाने के भय से उनकी माताजी उन्हें अपने साथ ले

---

[14] यशपाल - सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 55

गईं। इस प्रकार प्रारम्भिक कालों में ही उन्हें अपनी गरीबी का आभास हुआ तथा उनके मन में गरीबी से तथा पूँजीवाद से घृणा की भावना उत्पन्न हो गई।

'सिंहावलोकन' में उन्होंने अपनी मनोदशा का वर्णन किया है – "संभव है, अपने घर में अपने साधनों से निर्वाह करने का अवसर होने पर मेरे निम्न मध्यम श्रेणी के आत्मसम्मान की भावना को उतनी ठेस न पहुँचती, परन्तु गुरुकुल में समता की भावना अधिकार अनुभव हो चुके थे और अपनी गरीबी के लिए तिरस्कार पाने से मेरे मस्तिष्क पर खूब गहरा प्रभाव पड़ा। इस अपराध के प्रति अपने आपको किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझ सकता था। इसका कोई उपाय भी नहीं कर सकता था। ... मन में सोचता था, मैं खूब अमीर घर की संतान होता, तो कितना आदर और सुख मिलता? इस प्रभाव से गरीबी के अपमान के प्रति मैं कभी उदासीन न हो सका।"[15]

गुरुकुल में कठोर नियमों के साथ ही साथ ब्रह्मचर्य की रक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। वहाँ वेदों का अध्ययन कराया जाता था तथा स्त्री, श्रृंगार, यौन संबंधी ज्ञान से विद्यार्थियों को पूर्णतया अपरिचित रखने के विशेष प्रयत्न किए जाते थे। इसका विपरीत परिणाम यह होता था कि "विद्यार्थियों में इन विषयों की जिज्ञासा कुछ अधिक विकृत रूप लेकर पहुँचती थी। निरन्तर वर्जना के कारण उनका (ब्रह्मचारियों का) कौतूहल यौन संबंधी विचारों की ओर और भी अधिक उग्र हो जाता था।"[16] इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के कारण यशपाल ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरूष के यौन-संबंधों की स्वाभाविकता तथा अनिवार्यता पर जोर दिया है, जैसे – 'मनुष्य के रूप' तथा 'क्यों फँसे' में।

गुरुकुल के वातावरण ने उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा उत्पन्न की। काशीपुर की एक घटना ने यशपाल जी के बाल-सुलभ मस्तिष्क पर गहरी चोट पहुँचाई। काशीपुर के द्रोणसागर तालाब में कई स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। उस तरफ से दी-तीन अंग्रेज फौजी गोरों को आते हुए देखकर किस तरह चीखीं और

---

15 यशपाल – सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 45-46

16 यशपाल – सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 48-49

चिल्लाईं उसके बारे में यशपाल जी लिखते हैं – "उन गोरों का दिखाई देना था कि स्त्रियाँ भय से चीख-चीख कर एक-दूसरे से लिपटने लगीं और उसी अवस्था में अपने कपड़े उठाकर भाग निकलीं। अंग्रेजों से वह भय ऐसा ही था जैसे बकरियों के झुंड को बाघ देख लेने से भय लगता होगा।"[17]

अपने बचपन में यशपाल ने अंग्रेजों के आतंक और विचित्र व्यवहार की अनेक कहानियाँ सुनी थीं। बरसात या धूप से बचने के लिए कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के सामने छाता लगाए नहीं गुजर सकता था। बड़े शहरों और पहाड़ों पर मुख्य सड़कें उन्हीं के लिए थीं, हिन्दुस्तानी इन सड़कों के नीचे बनी कच्ची सड़क पर चलते थे। यशपाल ने अपने होश में इन बातों को सिर्फ सुना, देखा नहीं, क्योंकि तब तक अंग्रेजों की प्रभुता को अस्वीकार करने वाले क्रांतिकारी आंदोलन की चिंगारियाँ जगह-जगह फूटने लगी थीं। लेकिन फिर भी अपने बचपन में यशपाल ने जो भी कुछ देखा, वह अंग्रेजों के प्रति घृणा भर देने के लिए काफी था। वे लिखते हैं – "मैंने अंग्रेजों को सड़क पर सर्व साधारण जनता से सलामी लेते देखा है। हिन्दुस्तानियों को उनके सामने गिड़गिड़ाते देखा है, इससे अपना अपमान अनुमान किया है और उसके प्रति विरोध अनुभव किया...।"[18]

यशपाल के जीवन पर गुरुकुल का क्या प्रभाव पड़ा, उसके बारे में उनका कहना है – "सात वर्ष के वनवास के बाद लाहौर पहुँचने पर मैंने अपरिचित समाज का एक आतंक सा अनुभव किया। आचार-व्यवहार, बोलचाल सभी बातों में मैं अपने-आप को स्थानभ्रष्ट और दबा हुआ अनुभव करता था।"[19]

1919 ई. में यशपाल जी को सरकारी मिडिल स्कूल में भरती किया गया। वहाँ पर यशपाल ने प्रचुर मात्रा में साहित्य पढ़ा। यशपाल के लेखक जीवन की अनेक प्रारम्भिक रचनाओं के लिए उन्हें इसी स्कूल में बहुत ख्याति मिली। इस स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्होंने 'मनोहरलाल मेमोरियल हाईस्कूल' में प्रवेश लिया। वहीं से 1922 ई. में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, साथ ही साथ क्रांतिकारी कार्यों में भी भाग लेते रहे।

---

17 यशपाल – सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 41-42

18 यशपाल – सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 42

19 यशपाल – सिंहावलोकन भाग-1, पृ. 51

क्रांतिकारियों के प्रभाव से यशपाल इन्हीं दिनों क्रांतिकारी योजनाओं तथा क्रांतिकारियों की ओर आकर्षित हो रहे थे। लाहौर का नेशनल कॉलेज राष्ट्रवादी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। 1925 ई. में यशपाल जी ने नेशनल कॉलेज से बी.ए. किया तथा उसी वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। भगत सिंह, सुखदेव और भगवतीचरण जैसे महान क्रांतिकारी इसी कॉलेज के विद्यार्थी थे। इसी कॉलेज के इतिहास के प्रोफेसर जयचंद्र विद्यालंकार भी क्रांति के लिए विद्यार्थियों को बार-बार प्रोत्साहित करते थे। नेशनल कॉलेज के संस्कारों ने यशपाल जी को सशस्त्र क्रांतिकारी बनाया और उनका अगली जीवन अंगारों से भरी अनेक रोमांचकारी घटनाओं से भरा हुआ रहा।

2. क्रान्तिकारी यशपाल –

आर्य समाज और कांग्रेस वे पड़ाव थे जिन्हें पार करके यशपाल अंतत: क्रांतिकारी संगठन की ओर आए। उनकी माँ उन्हें स्वामी दयानन्द के आदर्शों का एक तेजस्वी प्रचारक बनाना चाहती थीं। इसी उद्देश्य से उनकी आरम्भिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई आर्य समाजी दमन के विरूद्ध उग्र प्रतिक्रिया के बीज उनके मन की धरती पर यहीं पड़े। यहीं उन्हें पुनरूत्थानवादी प्रवृत्तियों को भी निकट से देखने-समझने का अवसर मिला। अपनी निर्धनता का कचोट-भरा अनुभव भी उन्हें यहीं हुआ। अपने बचपन में भी गरीब होने के अपराध के प्रति वे अपने को किसी प्रकार का उत्तरदायी नहीं समझ पाते। इन्हीं संस्कारों के कारण वे गरीब के अपमान के प्रति कभी उदासीन नहीं हो सके।

कांग्रेस यशपाल का दूसरा पड़ाव थी। अपने दौर के अनेक दूसरे लोगों की तरह वे भी कांग्रेस के माध्यम से ही राजनीति में आए। राजनैतिक दृष्टि से फिरोजपुर छावनी एक शांत जगह थी। छावनी से तीन मील दूर शहर के लेक्चर और जलसे होते रहते थे। खद्दर का प्रचार भी होता था। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के समय यशपाल 18 वर्ष के नवयुवक थे - देश-सेवा और राष्ट्रभक्ति के उत्साह से भरपूर, विदेशी कपड़ों की होली के साथ वे कांग्रेस के प्रचार-अभियान में भी भाग लेते थे। घर के ही लुग्गड़ से बने खद्दर के कुर्त्ता-पायजामा और गांधी टोपी पहनते थे। इसी खद्दर का एक कोट भी उन्होंने

बनवाया था। बार-बार मैला हो जाने से ऊबकर उन्होंने उसे लाल रँगवा लिया था। इस काल में अपने भाषणों में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आँकड़ों के स्रोत के रूप में, वे देव-दर्शन नामक पुस्तक का उल्लेख करते हैं।

महात्मा गांधी और गांधीवाद से यशपाल के तात्कालिक मोहभंग का कारण भले ही 12 फरवरी, 1922 को चौरा-चौरी काण्ड के बाद महात्मा गांधी द्वारा आंदोलन के स्थगन की घोषणा रहा हो, लेकिन इसकी शुरूआत और पहले हो चुकी थी। यशपाल और उनके क्रांतिकारी साथियों का सशस्त्र क्रांति का जो एजेंडा था, गांधी जी का अहिंसा का सिद्धान्त उसके विरोध में जाता था। महात्मा गांधी द्वारा धर्म और राजनीति का घालमेल उन्हें कहीं बुनियादी रूप से गलत लगता था।

गुरुकुल कांगड़ी तथा नेशनल कॉलेज लाहौर की राष्ट्रभक्ति युक्त शिक्षा का प्रभाव तथा महान क्रांतिकारी भगतसिंह, सुखदेव और भगवतीचरण के सहवास से यशपाल सशस्त्र क्रांतिकारी बने। वास्तव में यशपाल जी स्वभाव से कोमल थे। सशस्त्र क्रांति में रक्तपात की अपेक्षा विचारों की क्रांति पर उनका आग्रह था, पर अपने अजीज मित्र भगतसिंह को दिया हुआ वचन निभाने के लिए यशपाल जी को इस संगठन में शामिल होना पड़ा। 1926 में यशपाल जी पूरी तरह से क्रांतिकारी बन गये। क्रांतिकार्य में अत्यंत सावधानी से कार्य करने वाले एकमात्र वैचारिक क्रांतिकारी यशपाल जी ही थे।

1928 में इन क्रांतिकारियों ने अपनी क्रांति का लक्ष्य 'सामूहिक सशस्त्र क्रांति द्वारा अपने देश से विदेशी सत्ता का उन्मूलन करना' निश्चित किया था और उनका उद्देश्य था - 'मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत।' सन् 1928 में ही इसी लक्ष्य और उद्देश्य को सामने रखकर इन नवयुवकों ने 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' की स्थापना की। इससे स्पष्ट होता है कि सन् 1928 से पहले 'सशस्त्र क्रांति' की अपेषा 'रूसी समाजवाद' की ओर आकृष्ट हो रहे थे, जिनमें यशपाल जी महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक माने जाते थे। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू के 'इन्किलाब जिंदाबाद', 'साम्राज्यवाद का नाश हो', 'संसार के मजदूरों, एक हो' इन नारों को देखकर ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

नौजवान भारत सभा की गतिविधियों में उनकी व्यापक और सक्रिय हिस्सेदारी वस्तुत: गांधी और गांधीवाद से उनके मोहभंग की एक अनिवार्य परिणाम थी। नौजवान भारत सभा के मुख्य सूत्रधार भगवतीचरण और भगत सिंह थे।

नौजवान भारत सभा के लक्ष्यों पर टिप्पणी करते हुए यशपाल लिखते हैं – "नौजवान भारत सभा का कार्यक्रम गांधीवादी कांग्रेस की समझौतावादी नीति की आलोचना करके जनता को उस राजनैतिक कार्यक्रम की प्रेरणा देना और जनता में क्रांतिकारियों और महात्मा गांधी तथा गांधीवादियों के बीच एक बुनियादी अंतर की ओर संकेत करना उपयोगी होगा। लाला लाजपतराय की हिन्दूवादी नीतियों से घोर विरोध के बावजूद उन पर हुए लाठीचार्ज के कारण, जिससे ही अंतत: उनकी मृत्यु हुई, भगतसिंह और उनके साथियों ने सांडर्स की हत्या की। इस घटना को उन्होंने एक राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा जिसके प्रतिरोध के लिए आपसी मतभेदों को भुला देना जरूरी था। भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम-कांड इसी सोच की एक तार्किक परिणति थी, लेकिन भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू की फांसी के विरोध में महात्मा गांधी ने जनता की ओर से व्यापक दबाव के बावजूद, कोई औपचारिक अपील तक जारी नहीं की।"[20]

उल्लेखनीय है कि लाहौर में लाला लाजपतराय पर जानलेवा हमला करने वाले पुलिस अफसर जे.पी. साण्डर्स और विलियम स्काट को उड़ाने की भावना से भड़के क्रांतिकारी भगत सिंह और राजगुरू ने 17 दिसम्बर, 1928 को लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज के सामने चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में साण्डर्स की हत्या का सनसनीखेज गोली काण्ड किया। इस क्रांतिकारी कार्य के लिए यशपाल ने रूपया जुटाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अत्यंत चतुराई से किया। 8 अप्रेल, 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली में बम विस्फोट करके पर्चे फैंके। इन पर्चों पर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' का उद्देश्य स्पष्ट रूप से लिखा था, "क्रांति का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों का रक्तपात करना ही नहीं, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा का अंत करके इस देश के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त

---

[20] यशपाल – सिंहावलोकन भाग-2, पृ. 164

करना है।"[21] इस योजना को भगतसिंह और यशपाल ने ही बनाया था। यहाँ यशपाल प्रमुख सूत्रधारों में से एक थे।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की गिरफ्तारी के बाद दल द्वारा लाहौर में एक बम फैक्ट्री का निर्माण हुआ। जयगोपाल, किशोरीलाल और भगतसिंह के साथ यशपाल का भी योगदान इस फैक्ट्री से बमों के निर्माण की प्रक्रिया में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा। दुर्भाग्यवश इस फैक्ट्री पर खुफिया पुलिस ने छापा मारा। सीाी साथी पकड़े गये। केवल यशपाल फरार होने में कामयाब हुए। फरार यशपाल को पकड़ने के लिए पुलिस ने 300 रूपये ईनाम की घोषणा की। फरार स्थिति में भी वे चुप नहीं बैठे रहे। भेष बदलकर बम निर्माण करने की कला को उन्होंने आत्मसात किया। कश्मीर में स्थित देवदत्तजी से उन्होंने यह कला सीखकर दिल्ली और रोहतक में बम निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया। अत्यंत परिश्रम से निर्मित किया हुआ बम दिसम्बर, 1929 की एक सुबह यशपाल ने वायसराय की गाड़ी के नीचे रखा। बम फटा, लेकिन वायसराय बाल-बाल बच गये।

यशपाल का प्रभाव अब दल में अधिक बढ़ गया था। यशपाल के क्रांतिकारी जीवन में प्रकाशवती नामक क्रांतिकारी महिला से उनका परिचय हुआ और उनके साथ यशपाल के प्रेम संबंध बढ़ गये। रूढ़िवादी परिवार के होते हुए भी प्रकाशवती क्रांतिकारी कार्यों में पूर्ण सहयोग दे रही थीं। प्राचीन धारणाओं के अनुसार उनके इस प्रकार के कार्यों से परिवार पर कलंक लग गया था। राजनीतिक परिस्थितियाँ भी उस समय काफी बदल चुकी थीं। दल की अनुशासन नीति के विरूद्ध कार्य होने के कारण यशपाल के विरोधी सदस्यों ने इस पर आपत्ति जताई। उन्होंने दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद को यशपाल के विरूद्ध किया तथा उन्हें शूट करने की आज्ञा सदस्यों को दी गई। यशपाल अब एक ओर से पुलिस और दूसरी ओर से अपने ही साथियों से बचते हुए क्रांतिकारी कार्य करते रहे। यशपाल ने अपने संबंधों को अपने साथियों के सामने स्पष्ट रखा, जिसके कारण चन्द्रशेखर आजाद द्वारा उन्हें प्राणदण्ड से मुक्त किया गया।

---

[21] यशपाल – सिंहावलोकन भाग-2, पृ. 179

1931 में चन्द्रशेखर आजाद लड़ते-लड़ते शहीद हो गये। उसके बाद सर्वसम्मति से 1931 में यशपाल को दल का नेता नियुक्त किया गया। यशपाल का यह सेनापतित्व काल एक वर्ष का भी नहीं रहा। 23 फरवरी, 1932 के दिन एक आइरिश महिला सावित्री देवी के इलाहाबाद स्थित मकान में यशपाल के होने की खबर उनके ही साथियों ने पुलिस को दी और पुलिस ने छापा मारकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। पुलिस पर गोली चलाना तथा बिना लाइसेंस हथियार रखने के जुर्म में यशपाल को 14 वर्ष की कड़ी सजा हुई। उन्हें 'बी' क्लास की श्रेणी मिलने के कारण जेल के एकान्त समय का सदुपयोग यशपाल ने साहित्य के सृजन के लिए किया। 'पिंजड़े की उड़ान' राजबंदी यशपाल के जेल जीवन की निर्मिति है।

3. विवाह एवं रिहाई –

चौदह वर्ष की सजा होने के कारण यशपाल ने अपनी प्रेमिका प्रकाशवती को अपने प्रेम से मुक्त करना चाहा। इसका परिणाम विपरीत ही हुआ। प्रकाशवती ने तपेदिक (क्षय) की बीमारी से पीड़ित यशपाल के साथ विवाहबद्ध होने का अभूतपूर्व निर्णय लिया। प्रकाशवती के निवेदनानुसार 7 अगस्त, 1936 के दिन यशपाल के साथ विवाह करने की अनुमति जेल सुपरिटेंडेंट से माँगी गई। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने एक पत्र भेजकर यशपाल से पूछा – "लाहौर निवासी मिस प्रकाशवती कपूर, बरेली केन्द्रीय जेल में बंद आतंकवादी कैदी यशपाल से विवाह करना चाहती है। कैदी यशपाल विवाह करना चाहता है या नहीं?"[22]

यशपाल की सम्मिति मिलने पर मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में दोनों सशस्त्र क्रांतिकारियों का जेल में विवाह हो गया।

विवाह के उपरान्त कुछ ही दिनों में यशपाल और असाध्य रूप से बीमार हो गये, प्रकाशवती भी कानूनी तौर पर उन्हें मुक्त कराने के प्रयास करती रहीं। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविन्द वल्लभ पंत और जेलमंत्री रफीक

---

[22] यशपाल – सिंहावलोकन भाग-3, पृ. 169

अहमद किदवई ने सरकारी तौर पर अधिक प्रयत्न किए और 2 मार्च, 1938 के दिन यशपाल कैदी जीवन से आजाद हुए।

क्रांतिकारी राष्ट्रभक्ति और बलिदान की भावना से प्रेरित-संचालित युवक थे। अवसर आने पर उन्होंने हमेशा बलिदान से इसे प्रमाणित भी किया। लेकिन यशपाल अपने साथियों को ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्द्धा-आकांक्षा वाले साधारण मनुष्यों के रूप में देखे जाने पर बल देते हैं। अपने संस्मरणों में आज राजेन्द्र यादव जिसे आदर्श घोषित करते हैं - 'वे देवता नहीं हैं' - उसकी शुरूआत हिन्दी में वस्तुतः यशपाल के इन्हीं संस्मरणों से होती है। ये क्रांतिकारी सामान्य मनुष्यों से कुछ अलग, विशिष्ठ और अपने लक्ष्यों के लिए एकांतिक रूप से समर्पित होने पर भी सामान्य मानवीय अनुभूतियों से अछूते नहीं थे। शरतचंद्र ने पथेरदावी में क्रांतिकारियों का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया, यशपाल उसे अवास्तविक मानते थे, जिससे राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा मिलती हो, उसे क्रांतिकारी आंदोलन और उस जीवन को वास्तविकता का एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक चित्र नहीं माना जा सकता। सुबोधचंद्र सेन गुप्त पथेरदावी में बिजली पानीवाली झंझावाती रात में सव्यसाची के निष्क्रमण को भावी महानायक सुभाषचंद्र बोस के पलायन के एक रूपक के तौर पर देखते हैं, जबकि यशपाल सव्यसाची के अतिमानवीय से लगने वाले कार्य-कलापों और खोह-खंडहरों में बिताए जाने वाले जीवन को वास्तविक और प्रामाणिक नहीं मानते। क्रांतिकारी जीवन के अपने लम्बे अनुभवों को ही वे अपनी इस आलोचना के मुख्य आधार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

4. व्यक्तित्व -

अत्यंत कर्मठ और कड़ी साहित्य साधना में रत यशपाल बाह्य रूप से अत्यंत गम्भीर और रूक्ष लगते थे, लेकिन आंतरिक रूप से वे अत्यंत मृदु एवं मुलायम प्रवृत्ति के थे। अवध नारायण मुदगल जो कि यशपाल जी के लेखन-कार्य में हाथ बँटाते थे, वह भी उनके रोबीले चेहरे, घनी भौंहों तथा आँखों को देखकर एक संस्कृत की कहावत लिखते हैं कि - "यशपाल जी को देखकर गोमुख और

सिंह-मुख की याद आती थी। गोमुख जितना देखने में सरल होता है, उतना सरल अन्दर नहीं होता। लेकिन सिंहमुख देखने में सरल नहीं होता, उतना ही अंदर से सरल होता है। संस्कृत की इस कहावत के अनुसार यशपाल जी सिंहमुख थे।"[23]

उनकी वेशभूषा के बारे में महेन्द्र पटियाला कहते हैं - "गैबर्डिन की खाकी पैंट और बूट, शरीर पर नीले रंग की कमीज, सफाचट दाढ़ी-मूछ, घनी भौंहें जो आधे आदिक सफेद थीं, नंगा सिर, मुँह में सिगार। इस वेशभूषा में वे मुझे पुलिस अफसर से दिखाई दिये। उनका चेहरा रोबीला और ज्यादा आतंकित करने वाली उनकी भौंहें हैं। आँखें उनकी बड़ी पैनी और दूर तक घुसने वाली हैं।"[24]

यशपाल जी के रहन-सहन में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव झलकता है। परन्तु विचारों से स्वतंत्र यशपाल जी अपनी मान्यता के अनुसार ही कार्य करते थे। आर्य समाज से प्रभावित होने के बावजूद उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह आर्य समाज की विधि के अनुसार नहीं किया। बेटी का कन्यादान किया जाए यह उन्हें मान्य नहीं था। उनके अनुसार दान तो वस्तुओं, जानवरों का किया जाता है, पढ़ी-लिखी बेटी का नहीं, इसलिए उन्होंने अपनी बेटी का कन्यादान नहीं किया।

आधुनिक विचारों के समर्थक यशपाल जी के विचारों में ही नहीं रहन-सहन में भी आधुनिकता दिखाई पड़ती है। अपनी कृतियों में भी उन्होंने अधिकतर विदेशी लेखकों का प्रभाव ग्रहण किया है। उन पर भारतीय संस्कृति की उपेक्षा का आरोप लगाने वालों को उनका उत्तर था, "संस्कृति और ज्ञान भौगोलिक रूप और जातीय सीमाओं में बंधी रहने वाली वस्तुऐं नहीं है। उनका विकास जीवन के भौतिक रूप और क्रम से होता है। यदि हमें अपने समाज के विकास के लिए पश्चिम में पहले विकसित वैज्ञानिक और औद्योगिक साधनों को अपनाना आवश्यक है तो इस प्रकार के जीवन से उत्पन्न होने वाली व्यवस्था और जीवन शैली से भी हम परहेज नहीं कर सकेंगे। नवीन विचारधाराओं और ज्ञान को अपना लेने से हमारी संस्कृति का क्षय नहीं होगा अपितु समृद्धि होगी। सजीव समाज की संस्कृति

---

23 धर्मयुग, 16 जनवरी, 1977 पृ. 32

24 यशपाल - अभिनंद ग्रंथ : महेन्द्र पटियाला, पृ. 21

प्रवाहशील नदी के समान होती है जिसमें प्रतिक्षण नया जल बहता है, परन्तु उससे नदी का नाम और अस्तित्व नहीं बदल जाता। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में नये विचारों, ज्ञान और साधनों को सम्मिलित कर लेने से हमारी संस्कृति की राष्ट्रीयता का क्षय नहीं हो जायेगा। उसमें जितनी भी संस्कृतियों से कुछ लेकर मिला लिया जायेगा उतनी ही समृद्धि होगी।"[25]

जीवन के भीषण संघर्षों से तपकर निखरे यशपाल जी के व्यक्तित्व का एक पहलू यह भी था कि उन्हें चित्र और शिल्प कला में रुचि थी। उन्हें पहाड़ी प्रदेशों में भ्रमण का भी शौक था। श्री प्रभाकर माचवे के शब्दो में यशपाल जी को सैर-सपाटे का बेहद शौक है। अज्ञेय की भांति वे काफी पैदल भी घूमे हैं। उनकी नयी कहानियाँ और लेख इस बात के साक्षी हैं।

आधुनिक विचारों के पोषक यशपाल जी का मानना था कि व्यक्ति को समयानुसार परिवर्तित विचारों से प्रभावित होना चाहिए। रुढ़ियों, परम्पराओं से बंधे रहने पर व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता। वे स्वयं अपने जीवन में रुढ़िगत संस्कारों से मुक्त थे। उनके अनुसार मनुष्य रुढ़ि, परम्परा, अंधविशवास, अज्ञान और कुंठा का पुंज बन गया है। आर्थिक और सामाजिक दबाव को शोषक समाज ने उसकी मूल चेतना और उसके जीवन के बीच एक अनुर्वर पठार बना दिये हैं जहाँ कोई भी बीज नहीं उगता।[26]

यशपाल जी का व्यक्तित्व क्रांतिकारी है। वे राजनीति और साहित्य सर्जन दोनों क्षेत्रों में क्रांतिकारी विचारधारा के पोषक रहे। दिखावे और रुढ़ विचारों से मुक्त यशपाल जी स्पष्ट, स्वतंत्र और आधुनिक व्यक्तित्व के स्वामी रहे।

यशपाल जी का साहित्यिक व्यक्तित्व सामाजिक धरातल से जुड़ा रहा। वे जीवन भर अपनी लेखनी को सामाजिक धरातल से संपृक्त कर प्रस्तुत करते रहे। साहित्य के क्षेत्र में भी वे क्रांतिकारी ही थे। उन्होंने क्रांतिकारी जीवन के साहस

---

[25] डॉ. सरोज गुप्त - यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 27

[26] डॉ. सरोज गुप्त - यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 23

और निर्भीकता की नींव पर साहित्यिक भवन का निर्माण किया है। अत: उनका साहित्यिक और क्रांतिकारी व्यक्तित्व परस्पर संबद्ध है।

उनमें जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा थी, इसलिए क्रांतिकारी जीवन में भी अपना साहित्यिक रचना का मोह नहीं छोड़ा। यशपाल जी उन साहित्यकारों में से हैं जो कलम और तलवार चलाने में समान सफलता प्राप्त कर चुके हैं। क्रांतिकारियों के दल में सम्मिलित होने पर भी उनकी कलम कभी नहीं रुकी। एक ओर पिस्तौल चलाना और दूसरी ओर कलम को गति देना, दोनों साथ-साथ चलते रहे। आर्थिक विषमताओं और विपरीत परिस्थितियों में भी यशपाल जी की कलम नहीं रुकी। उन्होंने जीवन भर कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए भी साहित्य सृजनवृत्ति को नहीं त्यागा। वे जीवन संघर्षों से जूझते हुए ही स्वतंत्र लेखन के क्षेत्र में उतरे और यह क्रम उनके जीवन पर्यन्त चलता रहा।

इनके जीवन के व्यक्तित्व के कई महत्त्वपूर्ण पहलू हैं, जैसे क्रांतिकारी यशपाल, सच्चे सेनानी यशपाल और रचनाकार यशपाल जो एक लड़ाकू सैनिक की तरह हमेशा ही अपने मार्ग पर तटस्थ रहे तथा समाज की व्यवस्थाओं से जूझते रहे। इस प्रकार स्वभाव से बेखौफ और निर्भीक, अपने उसूलों पर मरते दम तक चलने वाले, अभिनय में निपुण, चित्रकार तथा समय के पाबंद यशपाल निश्चय ही कड़ी साधना करने वाले तपस्वी के रूप में आजीवन साहित्य निर्मिति के यज्ञ में जुटे रहे। यशपाल के इस सर्वगामी, बहुआयामी व्यक्तित्व की तुलना किसी भी क्रांतिकारी अथवा साहित्यिक के साथ करना चुनौतीपूर्ण कार्य है।

5. कृतित्व -

2 मार्च, 1938 को जेल से रिहाई के बाद जब उसी वर्ष नवम्बर में यशपाल जी ने विप्लव का प्रकाशन-संपादन शुरू किया तो अपने इस काम को उन्होंने 'बुलेट बुलेटिन' के रूप में परिभाषित किया। जिस अहिंसक और समतामूलक समाज का निर्माण वे राजनीतिक क्रांतिकारी के माध्यम से करना चाहते थे, उसी समय की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखे गये साहित्य को प्राय: हमेशा ही विचारवादी कहकर संबोधित किया जाता है। नंद दुलारे वाजपेयी का प्रेमचंद

के विरूद्ध बड़ा आरोप यही था। अपने ऊपर लगाये गये प्रचार के आरोप का यशपाल जी ने उत्तर भी लगभग प्रेमचंद की ही तरह दिया।

अपने पहले उपन्यास दादा कॉमरेड की भूमिका में उन्होंने लिखा, "कला के प्रेमियों को एक शिकायत मेरे प्रति है कि मैं कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता हूँ। मेरे प्रति दिए गए इस फैंसले के विरूद्ध मुझे अपील नहीं करनी। संतोष है अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाता हूँ ...।"[27] अपने लेखकीय सरोकारों पर और विस्तार से टिप्पणी करते हुए बाद में उन्होंने लिखा, मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मुनष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अंतर्विरोध दिखाता है और नए आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं, इसलिए वह भौतिकवादी तो है ही परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नए आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है - साहित्य विचारपूर्ण होगा।

यशपाल जी का जीवन क्रांतिकारी का जीवन है। यशपाल निरे सिद्धांतवादी ही नहीं बल्कि कर्मठ साहित्यकार तथा विवेकशील विचारक भी हैं। यशपाल ने अपने क्रांतिकारी जीवन में पंजाब तथा उसके आस-पास के जिन-जिन स्थानों का विचरण किया, उनका सजीव चित्रण उनकी रचनाओं में प्राप्य है। वह केवल कल्पना के महल ही नहीं बनाते बल्कि यथार्थ जगत् में आकर पाठक को भी उसके बारे में जानकारी देते हैं। "अपने विचारों और विश्वासों को अपने ही ऊपर लागू करना खासा मुश्किल काम है, जीने और लिखने की दूरी को पाट सकना शायद उससे भी बड़ी बात है और अगर यशपाल जी ऐसा कर सकते हैं तो केवल इसलिए कि विश्वाश्रित वर्जनाओं से मुक्ति और अपने विवेक को ही

---

[27] यशपाल - दादा कॉमरेड, संस्करण 59, पृ. 4

उन्होंने अपना जीवन-दर्शन माना है और मनुष्य के सहज एवं प्राकृतिक रूप में ही उनके विश्वास की सम्भावनाओं की खोज की है।"[28] उनके द्वारा लिखित उपन्यासों, कहानियों तथा एकांकी नाटकों में इस प्रकार का मार्मिक धारा प्रवाह है जो सीधे हृदय-पटल को स्पर्श करता है। उनके निबंध कुछ वैचारिक तथा गम्भीर हो गये हैं। इतने कम समय में उन्होंने अधिक ग्रन्थों की रचना की है। इस दृष्टिकोण से उन्हें भारतेन्दु हरिशचन्द्र की श्रेणी में गिना जा सकता है। उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, यात्रा विवरण, एकांकी, संस्मरण, पत्रकारिता, अनुवाद जैसे अनेक क्षेत्रों में लेखन कर अपनी बहुमुखी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया है।

कहानीकार यशपाल – यशपाल ने गुरुकुल कांगड़ी में जब छठी कक्षा के विद्यार्थी थे तब ही 'अंगूठी' नामक कहानी लिखी थी। नेशनल कॉलेज लाहौर में जब वे थे तब 'प्रताप' और 'प्रभा' पत्रिकाओं में कहानियाँ लिखते थे। 1931 में जब वे फतेहगढ़ की जेल में थे तब उन्होंने 'पिंजड़े की उड़ान' तथा अन्य बहुत सी कहानियाँ लिखीं। यशपाल जी के प्रकाशित कहानी संग्रह इस प्रकार हैं – पिंजड़े की उड़ान (1939), वो दुनिया (1941), ज्ञान दान (1943), अभिशप्त (1943), तर्क का तूफान (1944), भश्मावृत चिंगारी (1946), फूलों का कुर्ता (1949), धर्मयुद्ध (1949), उत्तराधिकारी (1951), चित्र का शीर्षक (1951), तुमने क्यों कहा था (1954), उत्तम की माँ (1955), ओ भैरवी (1958), सच बोलने की भूल (1962), खच्चर और आदमी (1965)।

आत्मकथाकार यशपाल – कई रोमहर्षक प्रसंगों से भरी हुई एवं प्रामाणिकता से लिखी यशपाल की आत्मकथा तीन भागों में विभाजित है – सिंहावलोकन प्रथम भाग (1951), सिंहावलोकन द्वितीय भाग (1952), सिंहावलोकन तृतीय भाग (1955)।

संस्मरणकार यशपाल – लोहे की दीवार के दोनों ओर (1952), राह बीती (1953)।

---

[28] मधुरेश – यशपाल के पत्र, पृ. 21

नाटककार यशपाल – यशपाल जी ने केवल एकमात्र नाटक लिखा है – नशे नशे की बात (1952)।

निबंधकार यशपाल – यशपाल जी के सभी निबंध राजनीतिक चर्चा से तथा सामाजिक यथार्थ की परिचर्चा से भरे हुए हैं – न्याय का संघर्ष (1940), मार्क्सवाद (1941), गाँधीवाद की शव परीक्षा (1942), चक्कर क्लब (1943), बात बात में बात (1950), रामराज्य की कथा (1950), देखा सोचा समझा (1951), बीबीजी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है (1961), जग का मुजरा (1962)।

अनुवादकार यशपाल – यशपाल जी द्वारा अनुदित उपन्यास हैं – पक्का कदम, जुलैखां एवं फसल।

उपन्यासकार यशपाल – उपन्यास के क्षेत्र में यशपाल जी ने असीम यश प्राप्त किया है। प्रेमचन्द के पश्चात दूसरे युगान्तकारी उपन्यासकार यशपाल हैं। उन्होंने युग की महान समस्याओं को सुलझाने का बीड़ा उठाया तथा सामाजिक, राजकीय, ऐतिहासिक और पौराणिक सभी क्षेत्रों में अत्यंत प्रभावी लेखन कार्य किया। उन्होंने कुल मिलाकर ग्यारह उपन्यास लिखे। उपन्यासों में वर्णित समस्याएँ प्रबन्ध का विषय हैं। उपन्यासों का अति संक्षिप्त परिचय कालक्रमानुसार निम्नानुसार है –

(1) दादा कामरेड (1941) –

विकास क्रम की दृष्टि से देखा जाए तो 'दादा कामरेड' यशपाल जी की सर्वप्रथम राजनीतिक कृति है। यह उपन्यास मई, 1941 में प्रकाशित हुआ। इसमें रोमांस तथा राजनीति का सम्मिश्रण है। यह उपन्यास साम्यवादी विचारों से ओत-प्रोत तथा मार्क्सवाद से प्रभावित है। इसके कथानक में यशपाल ने हिंसात्मक भावनाओं तथा सशस्त्र डकैतियों का साफ-साफ विरोध किया है। इसमें दादा और हरीश के क्रांतिकारी जीवन के साथ ही साथ शैल की प्रेम कहानी भी चलती है। वह नारी-स्वतंत्रता के समर्थक हैं। यह उपन्यास यशपाल जी की आधुनिक नारी की स्वच्छन्दता तथा स्वतंत्रता की ओर बढ़ा हुआ कदम है।

इसकी भूमिका में इसके लेखन का उद्देश्य बताते हुए लिखा गया है, "समाज की मौजूदा परिस्थिति में और क्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य और विरोध की ओर संकेत करने के उद्देश्य से यह उपन्यास लिखा गया है। यशपाल जी ने इसमें गाँधीवाद, पूँजीवाद और समाजवाद जैसी विचारधाराओं का सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास का नायक हरीश है, जो इस सामंजस्य का प्रतीक है। इस उपन्यास की नायिका शैल नारी के प्रति होने वाले सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन का प्रतीक है। इसमें कथानक के ब्याज से सशस्त्र विद्रोह के जरिये देश को स्वतंत्र कराने के आंदोलन का इतिहास वर्णित है। इस उपन्यास में एक ऐसे संगठन का वर्णन है जो चोरी, डकैती से हथियारों का संग्रह करता है और इन हथियारों के जरिये देश को स्वतंत्र कराने का प्रयत्न करता है। क्रांति प्रयत्न में इस संगठन के कुछ सदस्य पकड़कर बीस साल के लिए जेल भेज दिये जाते हैं। एक बार जब पुलिस इन कैदियों को अदालत ले जा रही थी तो उसी समय उनके साथियों ने पुलिस पर आक्रमण कर उन्हें छुड़ा लिया। हरीश उन्हीं में से एक है।"[29]

शैल लाहौर के कपड़ा मिल डायरेक्टर तथा अमीर सेठ लाला ध्यान चन्द्र की पुत्री है। वह एक महाविद्यालय की छात्रा है। सभा और जलसों में भाषण देती है। कांग्रेस के पक्ष में प्रचार कार्य करती है। हरीश से भी उसका परिचय है। समय-समय पर हरीश की सहायता भी करती है। शैल अमरनाथ बाबू की पत्नी यशोदा को भी सक्रिय राजनीति में खींच लाती है।

इस उपन्यास में लेखक ने क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता का चित्रण किया है। इसमें लेखक अपना यह मत व्यक्त करने से नहीं चूका है कि द्वितीय विश्वयुद्ध में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अंग्रेजों का समर्थन किया जाना देश के लिए हितकारी सिद्ध होगा। इसमें हरीश और शैल की अधिकारिक कथा के अतिरिक्त अमरनाथ-यशोदा, राबर्ट-फलोरा और अख्तर-जमीला की प्रासंगिक कथायें भी हैं। इस उपन्यास में दार्शनिक वक्तव्यों की भरमार है, जिसके कारण कथा नीरस और

---

[29] यशपाल - दादा कामरेड : भूमिका

अस्वाभाविक हो गई है। राबर्ट जैसे पात्र के माध्यम से यशपाल जी ने अपने विशिष्ट विचारों को प्रस्तुत किया है। शैल को नग्न दिखाकर जिस अश्लीलता का आरोप लेखक ने अपने सिर पर लिया है उसका तर्क बल से कोई बचाव नहीं है। उपन्यास के अन्त में शैल का कामरेड बनना इस उपन्यास की सिद्धी है।

(2) **देशद्रोही** (1943) –

राजनीतिक और सामाजिक वर्ग से संबंधित यशपाल जी का दूसरा घटना-प्रधान उपन्यास देशद्रोही है जो कि सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। कथानक की पृष्ठभूमि में सन् 1942 का आन्दोलन है। इसकी कथा नौ प्रकरणों में विभक्त है। यह उपन्यास साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित है। इस कथानक का आधार है, एक अभागे व्यक्ति के जीवन तथा उसके दु:खी जीवन की कहानी, जो पग-पग धक्के तथा ठेस खाता हुआ ऊपर उठने की कोशिश करता है परन्तु ऊपर वाला उसकी दर्द भरी पुकार नहीं सुनता। आखिरकार उसे कितने विशेषणों – धूर्त, बदमाश, देशद्रोही के नाम से सम्बोधित किया जाता है और उसे वहीं पत्थरों पर तड़प-तड़प कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार अभागे द्रेशद्रोही का अन्त हो जाता है।

साम्यवादी दल को जो देशद्रोही कहा गया उसका प्रतीक डॉ. खन्ना हैं। लेखक ने पार्टी को उपर्युक्त दोष से मुक्त कराने के लिए ही यह उपन्यास लिखा है। डॉ. खन्ना की कथा इसकी मुख्य कथा है। राजाराम और चन्दा का पारिवारिक संघर्ष, राजदुलारी और बद्री की प्रणय कथा, यमुना और शिवनाथ के बीच भाई-बहिन के प्यार की कथा आदि प्रासंगिक कथानक हैं। इसमें घटनाक्रम बड़ा ही शिथिल है। घटनाओं की अधिकता और डॉ. खन्ना की विदेश यात्रा की विस्तृत चर्चा से कथा प्रवाह में बाधा आयी है।

इस उपन्यास में रोमान्स की इतनी बहुलता है कि कुछ लोगों ने इसे रोमानी उपन्यास की संज्ञा दी है। इसका अन्त डॉ. खन्ना की मृत्यु के माध्यम से दु:खांत है। विभिन्न राजनैतिक दल की गतिविधियाँ, हड़ताल और क्रमिक संगठनों का संघर्षशील वातावरण आदि बातें इसको राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी में ले आती

हैं। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का मत है – "देशद्रोही मूलतः एक रोमांस कृति है जिसमें खन्ना के रोमांसों की प्रधानता है। जिस वर्ग के लिए वह काम करता है, उस वर्ग का इसमें इतना और वैसा चित्रण नहीं है, जितना कि खन्ना के हृदय की प्रेम संबंधी उथल-पुथल का। इसे हम राजनीतिक उपन्यास न कहकर 'श्रीकान्त' की कोटि का एक सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं जिसमें प्रेम-कहानी प्रधान है।"[30] परन्तु इसे केवल रामांस उपन्यास की ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी परिस्थितियों पर विचार विमर्श किया गया है।

(3) दिव्या (1945) –

देशद्रोही के बाद यशपाल जी ने 1945 में 'दिव्या' उपन्यास लिखा। 'दिव्या' ऐतिहासिक कथानक के आधार तथा लेखक की कल्पना से परिपूर्ण कृति है जो युग-युग तक अपने दिव्य आलोक से समाज की आँखों को तृप्ति प्रदान करती रहेगी। इसमें मौर्यकाल के पतन के पश्चात् देश की विपन्न स्थिति की पृष्ठभूमि में ऐ शोषित नारी के रूप में दिव्या को प्रस्तुत किया गया है। इसके बारे में यशपाल जी ने स्वयं लिखा है – "दिव्या इतिहास नहीं ऐतिहासिक कल्पना-मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।"[31] इस उपन्यास में एक दलित, त्रस्त तथा युग-युग से प्रताड़ित नारी की दर्दभरी कथा है। जब सागल नगरी के वयोवृद्ध महापण्डित धर्मस्थदेव शर्मा की प्रपौत्री और जनपद कल्याणी राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या दिव्या सागल के सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी दास-पुत्र पृथुसेन को आत्मसमर्पण करती है तो उसे अनन्त दुःखों और यातनाओं का सामना करना पड़ता है।

---

30 डॉ. रामविलास शर्मा – संस्कृति और साहित्य, पृ. 302

31 यशपाल – दिव्या : प्राक्कथन, पृ. 5

यह कृति बौद्धकालीन कथानक के आधार पर सर्वदेशीय और सर्वकालीन सामाजिक मान्यताओं तथा उनसे पड़ने वाले प्रभावों की ओर संकेत है जो उच्चवर्ग द्वारा दासों के किये जा रहे शोषण से संबंधित है। उपन्यास के ऐतिहासिक होने का दावा न होने पर भी कथा ऐतिहासिक वातावरणों के चित्रण द्वारा रोचकता उत्पन्न की गई है। मुख्य और प्रासंगिक कथाओं के माध्यम से तथा कथित नैतिकता के प्रहरियों का पर्दाफाश किया गया है। यह उपन्यास शैली की दृष्टि से घटना प्रधान है। उपन्यास सुखान्त है। नाटकीयता और जीज्ञासा के तत्व सर्वत्र विद्यमान हैं। उपन्यास का घटना संगठन कथा को प्रथम स्तर पर स्थापित करता है।

(4) पार्टी कामरेड (1946) -

यह उपन्यास सन् 1946 में लिखा गया है और 94 पृष्ठों का यह एक लघु उपन्यास है। यशपाल के सामाजिक तथा राजनीतिक उपन्यासों के वर्ग की यह तीसरी रचना है। इसमें सन् 1942-46 के बीच के राजनीतिक संघर्ष को चित्रित किया गया है। सन् 1945 का आम चुनाव और नौ सैनिक विद्रोह इसमें वर्णित घटनाओं के केन्द्र बिन्दु हैं। इसकी कहानी के विषय में 'पार्टी कामरेड' की भूमिका में यशपाल जी ने लिखा है - "पार्टी कामरेड की कहानी आज की ही कहानी है, पाठक के चारों ओर मौजूद परिस्थितियों की कहानी। अपने सिर के केशों के संबंध में कौतूहल क्या, वह तो कटकर सामने ही गिरेंगे। पाठक की परिसिितियों की कहानी लिखना पाठक को दर्पण दिखाने समान ही है। यदि दर्पण में दिखाई देने वाले अपने रूप के संबंध में हमें भ्रम हो तो उसके दो कारण हो सकते हैं - दर्पण खराब हो सकता है, ऐसी स्थिति में दर्पण बनाने वाला ही दोषी है। दूसरा यह कि बहुधा हम अपने आप को वास्तविकता में बहुत अधिक रूपवान समझते हैं। ऐसा व्यक्ति शायद मिले जिसे अपना रूप ठीक याद हो। कम से कम अपने चेहरे का दोष दर्पण में देखे बिना जानना सीाव नहींइसलिए अपनी ही परिस्थितियों की कहानी लिखने की विशेष प्रवृत्ति हुई।"[32]

---

[32] यशपाल - पार्टी कामरेड भूमिका, पृ. 5

यशपाल जी अंतिम परिच्छेद में कुछ विशेष शब्द और लिखते हुए अन्त इस प्रकार करते हैं – "परिस्थितियों के इन सभी संघर्षों की झलक 'पार्टी कामरेड' में है, द्वेष की भावना नहीं। जैसा बन पड़ा वैसा ही है। देखिये तो और न देखिये तो ... और देखकर जैसा जँचे।"[33] इसी उद्देश्य को सामने रखकर यशपाल जी ने इस उपन्यास की रचना की।

उपन्यास के प्रमुख पात्र बम्बई के एक सेठ पद्मलाल भावरिया का कार्य जुआ खेलना, शराब पीना, गुण्डागर्दी करना, साथ ही साथ नई-नई लड़कियों को अपने जाल में फंसाना नित्य का कार्य था। बचपन में ही कुसंगति का शिकार होने के कारण वह फिर किसी प्रकार सुधर न सका। परन्तु कम्युनिस्ट लड़की गीता के सम्पर्क में आने से धीरे-धीरे उसकी अवस्था सुधर जाती है और अन्त में पदम्लाल गीता की खातिर अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देता है।

इस लघु उपन्यास में प्रासंगिक कथाओं और असंबद्ध घटनाओं का अभाव है। कथा शुरू से अन्त तक कसी हुई है। इसकी कथावस्तु पूर्णत: राजनैतिक है। यह साम्यवादी दल और कांग्रेस की एक दूसरे पर हावी होने की गतिविधियों को चित्रित करती है। चुनाव अभियान और नौसैनिक विद्रोह कथा के मुख्य विषय हैं। उपन्यास का मध्यभाग सिद्धान्त प्रतिपादन के कारण नीरस हो गया है। कुछ अप्रत्याशित घटनाओं का समावेश कर कथानक में नाटकीयता का निर्माण किया गया है। इसका अन्त 'देशद्रोही' की भाँति ही दु:खान्त है।

(5) मनुष्य के रूप (1949) –

यशपाल जी का यह उपन्यास राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ सामाजिक उपन्यास है। सन् 1949 में इनकी कृति प्रकाशित हुई। इस उपन्यास में लेखक हमें यह बताते हैं कि मनुष्य क्या है और उसके कितने रूप हो सकते हैं, अर्थात् बदलती हुई परिस्थितियों के साथ वह अपने कितने रूप धारण कर सकता है। एक ही समाज में तथा एक ही परिवार में मनुष्य के कितने रूप दृष्टिगोचर होते हैं। पहाड़ी जन-जीवन, तत्कालीन समाज में विधवा की स्थिति, पुलिस अत्याचार,

---

[33] यशपाल – पार्टी कामरेड भूमिका, पृ. 6

आजाद हिन्द सेना का गठन, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी का संघर्ष, भारत छोड़ो आन्दोलन, फिल्म जगत् की बुराइयाँ आदि इसके विचार बिन्दु हैं।

यशपाल मनोरमा के माध्यम से कहते हैं - "सोमा भी पहाड़न है ... इतना परिवर्तन सम्भव है? आदमी क्या है, और उसके कितने रूप हो सकते हैं। एक दिन धर्मशाला में उसके यहां भूषण सोमा को कुत्तों के भय से काँपती हुई बकरी की सी अवस्था में लाया था।"[34] केवल मनोरमा ही नहीं भूषण के भी सोमा के प्रति यही विचार हैं - "आदमी क्या है, उसके कितने रूप हो सकते हैं, कोई नहीं कह सकता।"[35] इस उपन्यास में भिन्न-भिन्न रूप बदलने के कई सामाजिक तथा आर्थिक कारण बताये गये हैं। इसमें राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के साथ प्रेम, सेक्स और रोमांस को भी विशेष प्रमुखता दी है। 'मनुष्य के रूप' एक सामाजिक उपन्यास है।

इस उपन्यास की कथा के केन्द्र में एक विधवा नारी की आत्मनिर्भरता के लिए किया गया संघर्ष है। अतः इसका कथानक सामाजिक क्षेत्र से लिया गया है। उपन्यास का केन्द्र बिन्दु सोमा की कथा, उसके प्रति पारिवारिक क्रूरता, पुरूष की लोलुप दृष्टि, नारी शोषण, विधवा विवाह, प्रेम आदि सांसारिक समस्याओं से ओत-प्रोत है तथा मनोरमा की कथा में प्रेम स्वेच्छित विषय तलाक आदि सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध है।

(6) अमिता (1956) -

अमिता उपन्यास सन् 1956 में लिखा गया है। इस उपन्यास में यशपाल जी ने इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना को केन्द्र बनाकर कल्पना के आधार पर रचना की। इतिहास की यह घटना अशोक की कलिंग विजय और अन्ततः उसके हृदय परिवर्तन से संबंध रखती है। इसमें एक नन्हीं सी बालिका की कहानी है जिसके कोमल हृदय पर माँ के विचारों की अमिट छाप पड़ जाती है और इससे एक क्रूर वीर अशोक सम्राट भी उसके कदमों में अपना मस्तक झुका देता है। इस

---

[34] यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ. 308-309

[35] यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ. 314

ऐतिहासिक कथा के मूल में सन् 1950 से 1955 के बीच की राजनीतिक घटनायें निहित हैं। दो विश्वयुद्धों से आतंकित विश्व में नेहरू जी की अगुवाई में तटस्थ देशों ने विश्व शांति का आह्वान किया था। इसमें पंडित नेहरू को 'शांति दूत' कहा जाने लगा था। शांतिदूत वाली यही घटना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अमिता की कथा है।

इस उपन्यास के माध्यम से यशपाल जी विश्वशांति की आवश्यकता को दर्शाना चाहते हैं। यशपाल जी का यह उपन्यास लिखने का उद्देश्य उनके प्राक्कथन से विदित होता है – "हमारा राष्ट्र अपने जीवन की अवस्था सुधारने का प्रयत्न कर रहा है और हमारे समाज की प्रमुख भावना निर्माण की ओर है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए युद्ध के विध्वंस से बचे रहने की ओर विश्वशांति की आवश्यकता अनिवार्य है।"[36]

यशपाल जी ने अमिता में नारी के दासी जीवन की समस्या का चित्रण किया है। नारियों को हर प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है और आजीवन दासी ही बनकर रहना पड़ता है।

अमिता द्वारा अशोक के हृदय परिवर्तन की घटना इस उपन्यास का मुख्य आधार है। इसके अतिरिक्त हिता और मोद की प्रणय कथा, सेठ सौमित्र की स्वार्थपरता और महामात्य की सत्ता लोलुपता जैसे प्रासंगिक कथाओं से इस उपन्यास का विकास हुआ है। कथा में 'प्रेम के खेल' प्रसंग में अमिता और हिता के बीच हुई बहस से कथानक का विकास बाधित हुआ है। कथा-वस्तु में ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का सुन्दर समन्वय है। यह उपन्यास हिन्दी केक श्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है।

(7) झूठा-सच, भाग-1 (1958) एवं झूठा-सच, भाग-2 (1960) –

झूठा-सच यशपाल का वृहद उपन्यास है। इसका भाग-एक 1958 में और भाग-दो 1960 में लिखा गया। इस उपन्यास की कथा दूसरे उपन्यासों की अपेक्षा अधिक विस्तृत और व्यापक है। पहला भाग – 'वतन और देश' जिसमें देश विभाजन

---

[36] यशपाल – अमिता प्राक्कथन, पृ. 5

से पूर्व और विभाजन के समय की विध्वंसकारी घटनाओं, लूटमार आदि का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वतन और देश का आधार सन् 1947 की क्रांति है। दूसरा भाग - 'देश और भविष्य' में स्वतंत्रता के पश्चात स्वतंत्र भारत में कांग्रेसी शासन के अन्तर्गत पल्लवित होने वाली सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ चित्रित की गई हैं। विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान से आये हुए परिवारों की दशा, फिर से नये घर बसाने में संलग्न। इसके साथ ही साथ पुराने सांस्कृतिक विचारों का धीरे-धीरे विलोप होना और उसके स्थान पर नये विचार तथा वातावरण के निर्माण का प्रयत्न। इन सबका यशपाल जी ने यथार्थ चित्रण किया है।

वास्तव में झूठा-सच का महत्त्व अमिट है। श्री पी.सी. गुप्ता के शब्दों में - "Many novels have been written on the sorrows of the Punjab after partition. This Novel of Yashpal is undoubtedly one of the most successful ventures in this direction. It also serves as an illustration of the vitality of the Hindi Novel to-day."[37]

(8) बारह घण्टे (1962) -

इस उपन्यास की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में की गई है। दाम्पत्य प्रेम की समस्या से सम्बद्ध इस उपन्यास में यशपाल न कुछ मौलिक प्रश्न उठाये हैं, जैसे - क्या दाम्पत्य प्रेम शाश्वत है? अथवा यह केवल सामाजिक कर्त्तव्य मात्र है? अथवा क्या यह प्रेम आत्मिक है? इन प्रश्नों को मूल में रखकर उपन्यास के कथानक का ताना-बाना बुना गया है। इस उपन्यास में पूर्ववर्ती उपन्यासों की भाँति राजनीतिक विवेचन का अभाव है। यह यशपाल का सबसे छोटा उपन्यास है। इसकी कथा मात्र बारह घंटे के कथानक से संबद्ध है।

यशपाल जी ने इस उपन्यास के माध्यम से पाठकों से जो अनुरोध है, वह भूमिका में स्पष्ट किया गया है - "विनी को प्रेम अथवा दाम्पत्य निष्ठा निबाह न सकने का कलंक देने का निर्णय करते समय, विनी के व्यवहार को केवल परम्परागत धारणाओं और संस्कारों से ही न देखा जाए। उसके व्यवहार को नर-नारी के व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता और पूर्ति की समस्या के रूप में

---

[37] डॉ. सुदर्शन मल्होत्रा - यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन, पृ. 18

तर्क तथा अनुभूति केक दृष्टिकोण से मानव में व्याप्त प्रेम की प्राकृतिक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में भी देखें। क्या नर-नारी के परस्पर आकर्षण अथवा दाम्पत्य संबंध को केवल सामाजिक कर्त्तव्य के रूप में ही देखना अनिवार्य है? क्या इस समस्या को व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता और तृप्ति के दृष्टिकोण से ही देख सकना संभव नहीं?"[38]

इस प्रकार लेखक ने समाज के युवा विधुरों और विधवाओं की समस्याओं की ओर ध्यानाकर्षित किया है। इस उपन्यास की पूरी घटना सुबह साढ़े आठ बजे से लेकर रात साढ़े आठ बजे तक ही बारह घंटों की सीमा में सिमटी हुई है। इन बारह घंटों में ही विधवा और विधुर के परस्पर परिचय से लेकर शारीरिक मिलन तक का दृश्य अंकित है। इस कथन के माध्यम से लेखक ने युवती विधवा और युवक विधुरों के प्रेम विवाह की आवश्यकता पर बल दिया है। इस उपन्यास का अन्त सुखद है। अन्य उपन्यासों की भाँति बीच-बीच में ही लम्बी दार्शनिक बहस है, जो कथा के प्रवाह को रोक देती है। पूरी कथा कब्रगाह, रेस्तराँ और घर इन तीनों स्थानों पर ही घटित होती है। पहाड़ी वातावरण ने कथा को रोचक बना दिया है। कथा की पृष्ठभूमि में नैनीताल है। पात्रों की स्पष्टवादिता, ईमानदारी और सहृदयता इस उपन्यास के कथानक की मुख्य विशेषताएँ हैं।

(9) अप्सरा का शाप (1965) -

पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित 'अप्सरा का शाप' नामक उपन्यास सन् 1965 में लिखा गया। यह उपन्यास संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के आधार पर आधारित है। शकुन्तला की कथा, प्रतिव्रत धर्म में निष्ठा की पौराणिक कथा है। यशपाल के प्रत्येक उपन्यास में नारी समस्या किसी न किसी रूप में रहती है। उसी प्रकार यह उपन्यास भी उसी परम्परा में है। स्वार्थी पुरूष समाज में नारी को अनेक सामाजिक एवं नैतिक बंधनों में जकड़कर अपने मनोविनोद और उपभोग की वस्तु बना डाला है। यशपाल का इस वृत्ति से सहज विरोध है।

---

[38] यशपाल - बारह घण्टे (भूमिका), पृ. 8

इस कथानक में यशपाल जी ने अपनी ओर से कुछ खास नहीं जोड़ा है। केवल शीर्षक में ही नवीनता है। शकुन्तला की पूर्व पीठिका स्पष्ट करने को आरंभ में मेनका और विश्वामित्र की कथा दी गई है। दैवलोक और मृत्युलोक में सामंजस्य के लिए सानुमति नामक दासी की योजना की गई है। नारी के आत्मोत्थान के रूप में इस कहानी को टालने का लेखक ने पूरा प्रयत्न किया है। इसका कथानक सुखान्त है।

(10) क्यों फँसे (1968) –

सन् 1968 में यशपाल जी का 'क्यों फँसे' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास यौन स्वेछाचार की पाश्चात्य मान्यता को भारत में लाने का प्रयास माना जाता है। लेखक का यह प्रयास बहुत प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। पारम्परिक यौन संबंधों की मान्यताओं से नर-नारी को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से लिखा यह उपन्यास मानव को पशु श्रेणी में ले जाने का प्रयत्न माना जायेगा।

इस उपन्यास में यशपाल ने स्त्री-पुरूष के काम संबंधी पारस्परिक संबंधों को आवश्यक मानते हुए एक नया मार्ग प्रदर्शित किया है। इसका मुख्य पात्र भास्कर जो एक के बाद एक अनेक स्त्रियों से टकराता है, परन्तु उनमें फँसता नहीं।

इस उपन्यास में भी अन्य उपन्यासों की ही भाँति प्रेम-विवाह तथा यौन संबंधों की चर्चा अधिक हुई है, जो कोई नई बात नहीं है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस कहानी का नायक भास्कर विवाहित जीवन को बंधन का जीवन मानता है। विवाहिता मोती का उसके प्रति रूझान भी नैतिकता के विरूद्ध है। भास्कर का उन्मुक्त यौनाचार पाठकों की दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं है। इस संबंध में यशपाल जी का चिंतन भी औचित्य की सीमा से परे है। कुल मिलाकर यह उपन्यास एक यौन कथा है।

(11) मेरी तेरी उसकी बात (1973) –

यशपाल जी का वृहत्काय उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' सन् 1973 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध, 1919 के रोलेट

अधिनियम, खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी सत्याग्रह, सन् 1929 में हुए दिल्ली एसेम्बली के बम विस्फोट, महात्मा गाँधी का सन् 1933 का अनशन, सन् 1936 का कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन, 1939 का त्रिपुरा अधिवेशन, द्वितीय महायुद्ध, सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन, आजाद हिन्द फौज की स्थापना और 1945 के आम चुनाव आदि का सुसम्बद्ध इतिहास इस उपन्यास में वर्णित है। इस प्रकार यह एक दस्तावेज है, न कि उपन्यास। इसमें 40 वर्षों का लम्बा कालखण्ड समाहित है। इसमें तीन पीढ़ियाँ चित्रित हैं।

इस उपन्यास के आरम्भ में यशपाल जी ने पिछली पीढ़ी के साम्यवादी समाज की परम्पराओं को दर्शाया है। इस पिछली पीढ़ी के प्रवर्तक सेठ रतनलाल हैं जो कि ऐशोआराम का जीवन बिताते हैं। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ईशा नाम वेश्या के सम्पर्क में आते हैं जिससे रतनी का जन्म होता है। रतनी के विवाह की चिंता दूर करने के लिए सेठ एक मकान ईशा के नाम पर रजिस्टर्ड करवा देते हैं जिससे संयुक्त परिवार में आग भड़क उठती है और भतीजों के साथ पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा हो जाता है। बँटवारे की चोट से घायल होने के बाद इंशा के तथा पड़ोसियों के आग्रह करने पर अमरो के साथ दूसरा विवाह रचाते हैं जो कि कुरूपा होते हुए भी पतिव्रता तथा आदर्श पत्नी थी। वह अमरनाथ (पुत्र) को जन्म देती है। कुछ वर्ष बाद अमरो परलोक सिधार जाती है जिससे सेठजी की बहन गंगा अमर को पाल-पोसकर बड़ा करती है। डॉ. होते हुए भी अमर समाजवादी विचारों वाला है। परिस्थितिवश उसे एक क्रिश्चियन लड़की ऊषा पंडित से विवाह करना पड़ता है। ऊषा एक स्वतंत्र विचारों वाली क्रिश्चियन परिवार की लड़की है, इसके विपरीत अमर एक हिन्दू परम्परावादी परिवार में पला हुआ है। दोनों की रूचियाँ और विचार एक-दूसरे से भिन्न हैं। कभी-कभी अमर के विचार पुराने और संकीर्ण हो जाते हैं, यहाँ तक कि अपने मित्र नरेन्द्र कोहली और ऊषा के बीच गलत संबंध सोचकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। ऊषा घर छोड़कर चली जाती है, इसी बीच अमर का एक्सीडेंट हो जाता है। इस गम्भीर अवस्था में वह ऊषा को देश के लिए संघर्ष की प्रेरणा देकर परलाक सिधार

जाता है। सेठ यह चोट सहन नहीं कर सके तथा उनके भी जीवन का अन्त हो जाता है। इन्हीं दिनों स्वतंत्रता आंदोलन जोर-शोर से शुरू हो जाता है और ऊषा भी इस आन्दोलन में कूद पड़ती है। इसमें पार्टी के एक साथी रूद्रदत्त पाठक उसका साथ देते हैं। विवशतावश दोनों को एक साथ रहना पड़ता है और इसी बीच ये विवाह की भी सोच लेते हैं, लेकिन अपने बेटे (पप्पू) की खातिर वह विवाह का विचार मन से निकाल देती है।

इस उपन्यास का लगभग आधा हिस्सा राजनीति से जकड़ा हुआ है और आधे से अधिक भाग में यशपाल ने नारी समस्या को चित्रित किया है। इनके सभी नारी पात्र समाज की मान्यताओं से जकड़े हुए हैं। इनकी मुख्य नारी पात्र ऊषा है जिसे यशपाल जी ने अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस उपन्यास में यशपाल जी ने पीढ़ियों की कथा का बड़ी सुन्दरता से निर्माण किया है। पहली पीढ़ी जो कि पुरानी पीढ़ी की कथाएँ हैं जिसमें सेठ रतनलाल, धर्मानंद पंडित तथा वकील कोहली हैं, जिनमें जातीय दुराभिमान, परम्परागत भावनाएँ तथा रूढ़िगत संकीर्ण विचार हैं जिनमें परिवर्तन होना असंभव है। दूसरी पीढ़ी अर्थात् नई पीढ़ी, इस पीढ़ी की कथाओं में अमर, ऊषा, पाठक, रजा और नरेन्द्र हैं जिनमें आधुनिकता की झलक मिलती है। यह पीढ़ी समाज में व्याप्त पुरानी परम्पराओं पर प्रहार करने और नई आस्थाओं का निर्माण करने में प्रयत्नशील है। तीसरी पीढ़ी का केवल संकेत मात्र ही किया गया है जो भविष्य की द्योतक है।

(ब) यशपाल की रचना दृष्टि -

डॉ. सुदर्शन मल्होत्रा का कथन है कि साहित्य के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न उपन्यासकारों ने जो कार्य किए उनसे यशपाल जी का कार्यक्षेत्र अलग प्रकार का है। उनका कहना है कि, "मुंशी प्रेमचंद के पश्चात् हिन्दी उपन्यास-साहित्य विविध दिशाओं में उन्मुख हुआ और उसने एक नई धरती जोड़ी। जैनेन्द्रजी ने मध्यम-वर्ग के शहरी जीवन के अनेक कुशल चित्र खींचे तो श्री भगवतीचरण वर्मा ने इतिहास को आधुनिक विचारों के आलोक में देखा और चित्रित किया तथा आज के

संस्कारों का खोखलापन भी दिखाया। श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने पहले उपन्यासों में मानसिक विकारों और ग्रंथियों का उद्‌घाटन किया और फिर प्रेमचंद की सामाजिक परम्परा को अपनाकर इसे समृद्ध किया। श्री अज्ञेय ने व्यक्ति मन की कुण्ठाओं का शिल्प से श्रृंगार किया, परन्तु प्रेमचंद के उपरान्त यशपाल ही वह समर्थ और कर्मठ उपन्यासकार हैं जिनकी वाणी में जनता का जीवन और उसकी समस्याएँ उभरकर आई हैं।"[39]

यशपाल जी शौकिया तौर पर लेखन के क्षेत्र में नहीं उतरे थे, बल्कि लेखन उनकी साधना थी। इसलिए अनेक बाधाओं, संघर्षों और अभावों से जूझने पर भी उनका लेखन दबने और कुंठित होने नहीं पाया। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट मान्यताओं और विचारों को लेकर यशपाल अनायास ही नहीं छा गए, बल्कि इसके लिए उनको अनेक विरोधों एवं चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा था।[40] उनका साहित्यिक चिंतन विचार प्रधान था। अपनी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रकाश में सामान्य जन जीवन के प्रतिकूल मान्यताओं की उन्होंने हमेशा आलोचना की। मार्क्सवादी होने के कारण यशपाल पूर्णतः नास्तिक थे। ईश्वर और धर्म आदि पर उनका तनिक भी विश्वास नहीं था। यही कारण है कि ईश्वर और धर्म आदि के नाम पर होने वाले मानवीय शोषण की उन्होंने खुलकर निंदा की। दकियानूसी विचारों, अंधविश्वासों, रुढ़ियों से मुक्त यशपाल की रचनाओं में एक स्वतंत्र पुट था, जो एक आधुनिक दृष्टि और सजग बौद्धिक मानस लिए हुए था।

जिस प्रकार से प्रत्येक साहित्यकार की जीपन और जगत् के प्रति अपनी कुछ निजी धारणाएँ होती हैं जो उसके साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं, उसी तरह यशपाल जी की जीवन दृष्टि के निर्माण में मार्क्सवादी दर्शन की प्रेरणा मुख्य रून से थी। उसी विचारधारा के प्रकाश में उन्होंने जीवन और जगत् को देखने का प्रयास किया। उनकी सम्पूर्ण चिंतनधारा चाहे उसका संबंध राजनीति, समाज,

---

[39] डॉ. सुदर्शन मल्होत्रा – यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन, पृ. 23

[40] डॉ. सरोज गुप्त – यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 32

अर्थशास्त्र, धर्म साहित्य या संस्कृति, जीवन के किसी भी पहलू से क्यों न हो, मार्क्सवादी विचारधारा के प्रकाश में ही आगे बढ़ी है।[41]

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम चरण तथा सम्पूर्ण बीसवीं शताब्दी नारी जाति के प्रगति का विकासकाल समझा जाता है। इस काल में नारी जीवन में कुछ विशेष परिवर्तन दिखाई देते हैं। सबसे मुख्य बात जो सबके दिल और दिमाग में व्याप्त थी, वह यह कि नारी एक मात्र पुरूष के उपभोग की वस्तु है और उसके जीवन में जो भी अच्छा या बुरा आए उसे सब सहना ही है। बीसवीं शताब्दी में आते-आते उनके इस विचार को नारी ने ठुकरा सा दिया।

सब प्रकार की यंत्रणाएँ सह-सह कर उसने बहुत कुछ अर्जित किया है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की नारी और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय नारी में महान् अन्तर दिखाई देता है। इसलिए अतीत काल की नारी के जीवन की जो समस्याएँ व चिन्तन था, उनसे आज की समस्याएँ व चिन्तन भिन्न हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य जीवन बड़ा कठिन है। उस पर भी नारी-जीवन बरगद के पेड़ की जटाओं की तरह जटिल है, जैसे बरगद के पेड़ की जटाएँ सुलझाना कठिन है वैसे ही नारी जीवन की समस्याओं का स्वरूप भी जटिल है।

यशपाल ने सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है, लेकिन मुख्यत: उनके उपन्यास किसी न किसी सामाजिक समस्या और चिन्तन पर आधारित हैं। यशपाल जी का कोई भी ऐसा उपन्यास नहीं जिसमें किसी समस्या अथवा चिन्तन को न उठाया गया हो लेकिन उन्होंने जहाँ तक हो सका है वैवाहिक जीवन की समस्याओं को प्रधान रूप से उठाया है फिर छोटी-छोटी समस्याएँ उसके साथ-साथ बराबर बनी रहती हैं। यशपाल जी ने समस्या को उठाकर छोड़ ही नहीं दिया बल्कि उसको सुलझाने का भी प्रयत्न किया है।

कुछ समस्याएँ शाश्वत होती हैं और कुछ सामयिक। शाश्वत समस्याएँ समाज तथा परिवार द्वारा बनाये गये विधान पर आधारित होती हैं जिसका सामना

---

[41] पारसनाथ मिश्र - मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, पृ. 112

अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता। समाज द्वारा लगाये गये विधान का उल्लंघन करने का अर्थदण्ड का भागी होना होता है।

सामयिक समस्याएँ वह होती हैं जो समयानुसार समाज में बनती बिगड़ती रहती हैं।

यशपाल ने विवाह संस्था के ऊपर जो आक्षेप उठाया वह शाश्वत समस्या है, बाकी समस्याएँ समयानुसार बदलने वाली हैं, अत: वह सामयिक हैं। इन दोनों प्रकार की समस्याओं का आधुनिक नारी बड़ी सतर्कता से सामना कर रही है।

यशपाल जी प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रगतिशील उपन्यासकार हैं। इस युग की नारी ने शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में प्रेमचन्द युग की नारी की अपेक्षा काफी प्रगति कर ली है जबकि प्रेमचन्द की नारी सामाजिक समस्याओं की जकड़ में जकड़ी हुई है। इसके विपरीत भारतीय नारी ने विश्वास अभिव्यक्त किया है कि कैसे भी हो उसे प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर होना ही है।

यशपाल जी का जो लेखनकाल था उस काल में नारी अपने जीवन को अनेक दृष्टियों से स्वाधीन बनाने की दिशा में प्रगति की ओर अग्रसर हो रही थी। यशपाल के उपन्यासों में इसी प्रगति की राह पर दौड़ने वाली नारी को किन-किन प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है इसका चित्रण मिलता है।

यशपाल के विशाल साहित्य के मापदण्डों को उनके साहित्य जीवन की विचारधाराएँ भी कहा जा सकता है। यशपाल जी की रचना दृष्टि को निम्न प्रकार देखा जा सकता है -

1. **राजनैतिक धारा -**

क) **मार्क्सवाद का आग्रह** - यशपाल के समूचे साहित्य में श्रमजीवी वर्ग के प्रति आस्था और बुझर्वा वर्ग के प्रति क्रोध दिखाई देता है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार यशपाल की धारणा है कि उत्पादन के समस्त साधनों पर विशेष का अधिकार न होकर समाज अथवा सरकार का अधिकार होना

चाहिए। यशपाल कट्टर मार्क्सवादी होने के कारण उनके समूचे साहित्य में मार्क्सवाद का प्रचार ही स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

ख) **गाँधीवाद का विरोध** – यशपाल ने अपने साहित्य में जहाँ मार्क्सवाद की प्राणप्रतिष्ठा की है, वहाँ गाँधीवाद की कटु आलोचना भी की है। 'गांधीवाद की शव परीक्षा' और 'रामराज्य की आत्मकथा' जैसी पुस्तकों में यशपाल ने गांधीजी के सत्य, अहिंसा और सिद्धांत तथा सामाजिक एकता के कार्य के लिए नाकाम साबित करने का प्रयास किया है। मार्क्सवाद किसी ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानता। गाँधीवाद के 'परलोक के लोभ' अथवा 'शाश्वत सत्य अहिंसावाद' के बारे में यशपाल कहते हैं – "'गांधीवाद', 'परलोक के लोभ' या आध्यात्म के नाम से जिस शाश्वत सत्य-अहिंसा का आदेश देता है, इसका प्रयोजन वर्तमान सामंतवादी पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली की रक्षा करना ही है।"[42]

गांधीवादी कांग्रेस सरकार को यशपाल ने 'निरंकुश शासन' माना है। गांधीवाद के 'ग्रामोद्योग' की जगह यशपाल विज्ञान के विकास को ही सर्वोपरि मानते हैं।

2. **सामाजिक धारा** –

यशपाल के समूचे साहित्य में मार्क्सप्रणीत समाज व्यवस्था का ही प्रतिपादन किया हुआ मिलता है। विशेष रूप में 'स्त्री-पुरूष यौन संबंध' तथा 'धर्म और संस्कृति' के संदर्भ में यशपाल पूरी तरह साम्यवादी विचारों के आग्रही हैं।

क) **स्त्री-पुरूष यौन संबंध** – मार्क्सवाद की तरह यशपाल ने स्त्री-पुरूष को मुक्त तथा स्वतंत्र रूप में स्वीकारा है, लेकिन वेश्यावृत्ति का तीव्र विरोध भी किया है। स्त्री और पुरूष को अपना जीवन साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए, उनके ऊपर जाति, समाज तथा धर्म का प्रभाव नहीं रहना चाहिए। अनेक पुरूषों के साथ भोग करने के पश्चात् भी नारी यदि

---

42 यशपाल – गाँधीवाद की शव परीक्षा, पृ. 27

मन से पवित्र है तो उसे पवित्र और शुद्ध मानना चाहिए। अपने विचारों के अति आग्रह के कारण ही उनके उपन्यासों की प्राय: सभी नारियाँ अपनी शारीरिक भूख मिटाने वाली विषयासक्त सामान्य नारियाँ लगती हैं।

ख) **यथार्थवाद और आदर्शवाद** – 'देशद्रोही' उपन्यास की भूमिका में यशपाल ने यथार्थवाद और आदर्शवाद की धारणा को स्पष्ट किया है। "चरित्रों और कथाओं' के ज्यों के त्यों चित्रण को ही यथार्थ कहा जा सकता है और उसको एक वशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु परिवर्तित करने को ही आदर्शवाद कहते हैं।"[43]

यशपाल का साहित्य 'सामाजिक यथार्थवाद' के अन्तर्गत आता है। नग्न यथार्थ को अपनाने के बारे में यशपाल का कथन है – "हमारे यथार्थ का नग्न स्वरूप केवल शिष्णोदर का चीत्कार है। वह श्रेणी संघर्ष और राष्ट्र संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। यह जघन्य है, परन्तु वह हमारी सामाजिक स्थिति की वास्तविकता है।"[44]

यशपाल ने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में जो यथार्थ स्वीकृत किया है, वह पात्रों के स्वैर यौनाचार के कारण विकृत हो गया है। 'दादा कामरेड' से 'क्यों फँसे' तक के उपन्यासों तथा सभी कहानियों की रूमानियत को प्रो. प्रवीण नायक ने 'रोमांटिक यथार्थ' कहा है।

ग) **यशपाल और प्रगतिवाद** – साहित्य क्षेत्र में जब मार्क्सवाद आता है, तब वह प्रगतिवाद कहलाता है। यशपाल अंतरबाह्य प्रगतिवादी कलाकार हैं। वे आध्यात्म, पाप-पुण्य, तीर्थ, व्रत, त्यौहार, धार्मिक संस्कार, देव आदि को शोषक वर्ग के द्वारा शोषण के लिए बनाये गये साध नही समझते हैं। श्रीमती प्रकाशवती पाल के शब्दों में "यशपाल न केवल प्रगतिशील हैं, बल्कि प्रगतिशीलों में प्रमुख हैं।"[45]

---

43 यशपाल – देशद्रोही : भूमिका, पृ. 5

44 यशपाल – देशद्रोही : भूमिका, पृ. 5

45 महेन्द्र पटियाला – यशपाल : अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 9

प्रसिद्ध प्रगतिशील आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा उन्हें प्रगतिवादी लेखक नहीं मानते। प्रो. प्रवीण नायक भी उनकी प्रगतिशीलता पर उँगली उठाते हुए कहते हैं, "यशपाल में एक प्रगतिशील लेखक के गुण हैं, किन्तु वे इन गुणों का उपयोग सामाजिक पीड़ा, करूणा, दयनीयता, निरीहता, शोषण, उत्पीड़न और असमानता आदि के चित्रण में कम करने में अधिक करते हैं। यशपाल इन्हीं चित्रों को अपने साहित्य में सफलता से अंकित करने के कारण यदि अपने आपको प्रगतिशील समझ लें तो यह केवल उनका भ्रम है, जिसके लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, अन्य नहीं।"[46]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रगतिवादी यशपाल के सम्मुख प्राचीन सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था ज्वलन्त समस्या का रूप लेकर खड़ी है। इसके अन्तर्गत हमारी वर्गीय भावनायें, धार्मिक आस्थायें, नैतिक मान्यतायें और नारी संबंधी विभिन्न उपन्यासों में प्रमुखता के साथ देखी जा सकती है।

यशपाल जी के पास उक्त समस्याओं के समाधान का आधार मार्क्सवादी सामाजिक व्यवस्था संबंधी आचार संहिता है, जिसका समर्थन विभिन्न रूपों में उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। अतः उनके उपन्यास इस दृष्टि से एक 'विशिष्ट' विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था मार्क्सवाद का आधार है। उसे यह स्वीकार नहीं कि एक वर्ग के स्वार्थों पर दूसरे वर्गों के स्वाथों का बलिदान हो। विकास और उन्नति का अवसर सबको समान रूप से मिले, वर्ग-भावना इस ओर बाधक नहीं हो सकती। मार्क्सवाद वैयक्तिक स्वतंत्रता और विकास को बहुत महत्त्व देता है। इसलिए वह वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक समानता सभी व्यक्तियों को समान रूप से देना चाहता है, केवल कुछ एक को ही नहीं। यदि किसी एक व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ सैंकड़ों व्यक्तियों की स्वतंत्रता का नाश हो, तो इस प्रकार की वैयक्तिक

---

[46] प्रो. प्रवीण नायक – यशपाल का औपन्यासिक शिल्प, पृ. 41

स्वतंत्रता के लिए मार्क्सवाद में स्थान नहीं है। मार्क्सवाद ऐसी वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थ है, जो समाज के सभी व्यक्तियों के लिए संभव हो।[47]

यशपाल एक सफल लेखक हैं, भाषा पर उनका अधिकार है। उन्होंने कहीं सीधे विवेचनों द्वारा और कहीं व्यंग्य द्वारा अपने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट की है। उनकी कलम का सामर्थ्य नि:संदेह शब्दों में उतर आया है। उदाहरण स्वरूप मध्यम वर्ग की मानसिकता का चित्रण करते हुए वे कहते हैं – "मध्यम श्रेणी अनिश्चित स्थिति के लोगों की एक अद्‌भुत पंचमेल खिचड़ी है। कुछ लोग मोटरों और शानदार बंगलों का व्यवहार कर विनय से अपने आपको इस श्रेणी का अंडा बताते हैं। दूसरे लोग मजदूरों की सी असहाय स्थिति में रहकर भी केवल सफेदपोश और शिक्षित होने के बल पर इस श्रेणी का अंडा होने का दावा करते हैं। देश की राजनीति और समाज-सुधार की चिन्ता जितनी इस श्रेणी को रहती है, उतनी न तो अपने विस्तृत स्वार्थों की चिन्ता में व्यस्त रहने वाली ऊँची श्रेणियों को और न रोटी के टुकड़ों की चिन्ता से कभी मुक्ति न पाने वाली निम्न श्रेणियों को ही।"[48]

यशपाल जी ने प्राय: अपने प्रत्येक उपन्यास में 1947 से पूर्व ब्रिटिश नीति के विरोध में देश की स्वतंत्रता के लिए कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा किये गये प्रयत्नों का उल्लेख किया है। इसलिए राजनीतिक वातावरण प्राय: सभी उपन्यासों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं के विवेचन की भी कमी नहीं। उनके अनुसार सामाजिक विपन्नता का कारण है, आर्थिक विषमता। आर्थिक विषमता के कारण प्रत्येक मनुष्य समाज में विकास का समान अवसर प्राप्त नहीं कर पाता। समाज की प्रत्येक स्थिति का प्रभाव परिवारों पर पड़ता है। मार्क्सवाद के अन्तर्गत आर्थिक विषमता के अन्त के साथ ही नारी को भी पुरूष के समान अधिकार दिये जाते हैं। समाज के प्रति जितना उत्तरदायित्व पुरूष का है, उतना ही स्त्री का भी। मार्क्सवाद स्त्री-पुरूष के संबंध को स्त्री-पुरूषों की प्राकृतिक

---

47 यशपाल – मार्क्सवाद, पृ. 69

48 यशपाल – दादा कामरेड, पृ. 19

आवश्यकता और कर्त्तव्य का संबंध मानता है। इसके लिए वह दोनों में से किसी को एक दूसरे का ढाल बन जाना आवश्यक नहीं समझता।[49] पुरूष यदि सामाजिक परिस्थितियों के कारण शारीरिक बल में या मस्तिष्क के कामों में अधिक सफलता प्राप्त कर सका है, तो स्त्री का महत्त्व पुरूष को उत्पन्न करने, परिवार और समाज को संगठित और व्यवस्थित करने में कम नहीं है। पुरूष-समाज का अस्तित्व स्त्री बिना संभव नहीं है।[50]

यशपाल के अनुसार स्त्री आत्मनिर्भर होकर ही पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर सकती है, यदि वह आत्मनिर्भर नहीं है तो उसे जीवन निर्वाह के लिए किसी न किसी पुरूष का आश्रय ग्रहण करना ही होगा। माँ बनने का अधिकार नारी का प्राकृतिक अधिकार है, उसका यही अधिकार समाज के अस्तित्व का आधार है। अत: इस आधिकार के प्रयोग की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। स्वेच्छा से उत्पन्न की गई संतान के प्रति न केवल वही (स्त्री) उत्तरदायी होगी वरन् सम्पूर्ण समाज उसके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के प्रति उत्तरदायी होगा।

राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही यशपाल जी के उपन्यासों में स्त्री को भी उक्त प्रकार की स्वतंत्रता दिये जाने पर जोर दिया गया है। उन्होंने लिखा है - "प्रकृति की दूसरी शक्तियों की भाँति मनुष्य की सृजन वृत्ति भी एक शक्ति है। प्रकृति की शक्तियों, जलवायु और विद्युत को मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए वश में कर लिया है तो क्या वह अपनी सृजन शक्ति को स्वाभाविक मार्ग देकर अपने जीवन के आनन्द के स्रोत को संकट का कारण बनने से नहीं बचा सकता?"

यशपाल जी का साहित्य का रूप उनके संघर्षपूर्ण जीवन के बीच से उत्पन्न हुआ है। संघर्षों से जूझने वाला जीवन ही वास्तविक जीवन है। अत: साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है तो उसमें संघर्षों का चित्रण भी अवश्य होना चाहिए, ऐसा उनका मानना था। साहित्य और समाज को संबद्ध देखने वाले यशपाल जी की रचनाएँ विचार प्रधान होने पर भी जनवादी थीं। मार्क्सवादी विचारधारा के

---

49 यशपाल - मार्क्सवाद, पृ. 90

50 यशपाल - मार्क्सवाद, पृ. 85

आलोक में वह जीवन को एक नए समाज के अंदर सुखी भूमिका में देखने के अभिलाषी थे। प्रश्न चाहे पुरानी मान्यताओं एवं परम्पराओं के रहे हों या आधुनिक मूल्यों के, यदि वे मानव जीवन के स्वस्थ विकास के प्रतिकूल जान पड़ें तो यशपाल ने उनकी निमर्म आलोचना की।

निष्कर्षत: यशपाल जी का साहित्यिक व्यक्तित्व एक ऐसे साहित्यकार का व्यक्तित्व है जो जीवन भर अपनी लेखनी को सामाजिक धरातल से जोड़े रहा। साहित्यकार की हैसियत से झूठ से ठगा जाने वाला, राजनीतिक फरेब से लूटा जाने वाला और अंधविश्वासों की रुढ़ियों से फुसलाया जाने वाला समाज ही उनकी चिंता एवं रचनाओं का मुख्य विषय रहा।

(स) निर्वाण –

एक महान साहित्यकार को जितनी लम्बी आयु मिलनी चाहिए थी, उतनी लम्बी आयु यशपाल जी को मिली। क्रान्तिकार्य के कठिन पथ पर चलते-चलते उनका शरीर पूर्व में ही अनेक रोगों का शिकार हो चुका था। सात वर्ष की आयु में संग्रहणी, करावास में क्षय, ढलती आयु में मूत्र पिंड की बीमारी, मोतिया बिंद और कंठ की बीमारी आदि बीमारियाँ उनके जीवन काल में उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती रहीं।

3 दिसम्बर, 1976 को नव-निर्वाचित प्रगतिशील लेखकों ने उनकी 73वीं जन्मतिथि बड़े धूमधाम से मनायी। स्वयं बीमारियों से पीड़ित होने के बावजूद भी यशपाल इन्हीं दिनों 'सिंहावलोकन' का चतुर्थ भाग लिखने में व्यस्त थे। 'मेरी तेरी और उसकी बात' उपन्यास का दूसरा भाग लिखने का विचार भी उनके मन में था। किन्तु 26 दिसम्बर, 1976 की सुबह इस महान साहित्यिक का परम तत्व में विलयन हो गया। यशपाल जी की मृत्यु से सारा साहित्य संसार व्यथित हो गया। यशपाल का यह निर्वाण एक महान साधक का महानिर्वाण बनकर अमर बन गया।

निष्कर्ष –

यशपाल का जन्म मध्य-निम्नवर्गीय सुखासीन खत्री परिवार में कांगड़ा जिले में फिरोजपुर छावनी में 3 दिसम्बर, 1903 में हुआ। उनका पैतृक गाँव भूम्पल था जो पहले रिंघाल नाम से जाना जाता था। यशपाल के पिता का नाम हीरालाल तथा माता का नाम प्रेमदेवी था। यशपाल का बचपन आम बालकों की तरह माता-पिता की कृपा ममता भरी छाँव में नहीं बल्कि कठोर जिंदगी के साथ पल-पल संघर्ष करते गुजरा। यशपाल जब नेशनल कॉलेज में दाखिल हुए थे तब उनके पिता का देहान्त हो गया था।

आर्यसमाजी शिक्षा ने यशपाल के मन में सामाजिक विषमताओं के प्रति विद्रोह तथा उच्च शिक्षा ने उन्हें निर्भयता, साहस तथा ऐसा आत्मसम्मान दिया था कि जिसके सहारे वे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, जातिद्वेष तथा संकीर्णता की असमानताओं को दूर करने की तीव्र आकांक्षा रखते हुए क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होकर उसके नेता बने। दिल्ली के गढ़मुक्तेश्वर की मीटिंग में यशपाल क्रांतिकारी दल के नेता चुने गये थे। स्वतंत्रता संग्राम में वे सक्रिय रहे थे। विवाह की रजिस्ट्री में लिखा-पढ़ी करते समय यशपाल से उनके धर्म के बारे में पूछा गया तो उन्होंने अपना धर्म बुद्धिवाद बताया था।

यशपाल स्वभाव के बड़े विनम्र थे। उनका स्वभाव अत्यंत सरल था। वे नि:स्वार्थी थे। उनकी सेवाभावना का आनन्द उठाने की पृवत्ति थी। उनके अपने परिवार, स्नेहीजन, व्यावसायिक बंधुजन, मित्रगणों के साथ बहुत ही अच्छे संबंध थे। विशेषत: उनका सभी के साथ आचरण मानवता से परिपूर्ण रहा है।

यशपाल का गद्य-साहित्य विशाल है। वे कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, उपन्यास, यात्रावृत्त, आत्मवृत्तात्मक संस्मरण, प्रचारात्मक प्रासंगिक लेखन करते रहे। परन्तु उन्होंने स्वयं को साहित्यकार और कलाकार के रूप में अपने साहित्य द्वारा प्रसतुत किया। उनकी वे धारणाएँ उन्होंने अपने साहित्य द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत की हैं।

यशपाल नवम्बर, 1938 से हिन्दी में 'विप्लव' और उर्दू में 'बागी' मासिक पत्रिका प्रकाशित करते थे। सन् 1940 से लेकर सन् 1955 तक यशपाल ने अपने

बारह कहानी संग्रहों के माध्यम से लगभग 150 कहानियाँ हिन्दी साहित्य को प्रदान कीं। यशपाल की पत्नी डॉ. प्रकाशवती पाल कहती हैं कि पत्रिका के अधिकतर लेख यशपाल ने ही अलग नामों से लिखे हैं। यशपाल के बारह उपन्यास - दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), दिव्या (1945), पार्टी कामरेड (1947), मनुष्य के रूप (1949), अमिता (1956), झूठा सच (वतन और देश) (1958), झूठा सच (देश का भविष्य) (1960), बारह घंटे (1963), अप्सरा का शाप (1965), क्यों फंसे (1968) और मेरी तेरी उसकी बात (1974) में प्रकाशित हुए।

यशपाल का साहित्य का रूप उनके संघर्षपूर्ण जीवन के बीच से उत्पन्न हुआ है। साहित्य और समाज को संबंद्ध देखने वाले यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व विचार प्रधान होने पर भी जनवादी था। मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में वह जीवन को एक नये समाज के अन्दर सुखी भूमिका में देखने के अभिलाषी थे। यही कारण है कि यशपाल का जो साहित्यिक व्यक्तित्व निखरकर आया वह विद्रोही अधिक है। मार्क्सवादी होने के कारण यशपाल पूर्णत: नास्तिक थे। ईश्वर और धर्म आदि पर उनका तनिक भी विश्वास नहीं था। यही कारण है कि ईश्वर और धर्म आदि के नाम पर होने वाले मानवीय शोषण की उन्होंने खुलकर निंदा की। दकियानुसी विचारों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों से मुक्त यशपाल का व्यक्तित्व एक स्वतंत्र व्यक्तित्व था जो एक आधुनिक दृष्टि और सजग बौद्धिक मानस लिए हुए था। मानव शोषण चाहे वह जैसा भी हो, यशपाल उनके प्रति गहरा आक्रोश ही व्यक्त करते हैं।

यशपाल का जन्म 20वीं शती के आरम्भ काल में हुआ जब हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की सत्ता थी। हमारे देश को अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराने के सफल / असफल प्रयास हो रहे थे। औद्योगिक क्रांति की वजह से योरोप में हुआ परिवर्तन तथा उस परिवर्तन के कारण के कारण हुए साम्राज्यवाद की गहरी छाया हिन्दुस्तान में भी छायी हुई थी। अंग्रेजों ने भारत में सार्वत्रिक शिक्षा का आरम्भ कर शिक्षा के क्षेत्र में एक नये क्रांतिकारी पर्व की शुरुआत की थी। गुलाम हिन्दुस्तान में कई बुद्धिमानों ने इस अंग्रेजी तालीम को समाज की सर्वांगीण जागृति

के लिये आवश्यक समझा और हिन्दुस्तान में एक नई क्रांति का जन्म हुआ। वस्तुतः यशपाल के युग की विभिन्न परिस्थितियों यथा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप वे भी समाज का उद्‌बोधन करने में प्रयत्नशील रहे।